युग सेतु

वर्ष 6 अंक 68 अप्रैल-मई 2017

वेबसाइट : www.yugsetu.com

संपादक
ओम प्रकाश शर्मा

कार्यालय
जी-21, प्रथम तल, लक्ष्मी नगर
दिल्ली-110092
दूरभाष-011-22040692

संपर्क कार्यालय
873, सेक्टर-21सी, हरियाणा-121001
दूरभाष-9013379808, 9650914297

ई.मेल : yugsetu@gmail.com

स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक ओम प्रकाश शर्मा द्वारा, जी 21 लक्ष्मी नगर, दिल्ली से प्रकाशित एवं ग्राफिक प्रिंट, 383 एफ.आई.ई.पटपड़गंज इंडस्ट्रीयल एरिया, दिल्ली 110092 से मुद्रित।

अंदर के पन्नों में .....

संपादकीय (2)

मानव तस्करी का मकड़जाल (5)

अकथ अलेख की समीक्षा (7)

परीक्षा का मौसम (10)

महाकवि अनूप (12)

गैर कांग्रेसवाद के शिल्पी लाहिया (18)

जेल की दुनियॉ (17)

नगर निगम चुनाव के दूरगामी संकेत (20)

रचनात्मक साहित्य
कविताएँ व कहानियॉ (23)

सामयिकी (24)

युग सेतु में लेखकों के प्रकाशित आलेखों के विचारों से संपादक या प्रकाशक का सहमत होना आवश्यक नहीं है।
किसी भी विवाद का निबटारा दिल्ली न्यायालय में होगा।

सत्यांश

माता बनाम मातृत्व

परंपरागत तौर पर मातृत्व को नारी जीवन की चरम सार्थकता कहा जाता है और इसके बिना उसका जीवन अधूरा माना जाता है। लेकिन क्या संतान की उत्पत्ति के बाद माता बन जाना ही मातृष्व के लिए यथेष्ट है? अधिकतर स्त्री-पुरुष संतान को जन्म देकर माता-पिता बन ही जाते हैं और फिर मातृत्व-पितष्त्व का भाव उनके अंदर स्वतः प्रस्फुटित होता है। इस आधार पर जो स्त्री-पुरुष किसी कारण से संतानोत्पति से वंचित रह जाते हैं, क्या वे स्वाभाविक रूप से मातष्त्व-पितष्त्व भाव से रहित ही होंगे? इसकी परख से पूर्व इस बात की तहकीकात आवश्यक है कि मातष्त्व या पितष्त्व वास्तव में है क्या? प्रथमदृष्ट्या यह बात चहुँओर प्रचलित है कि संतान होना मातृत्व के लिए एक अनिवार्य शर्त तो है। इस शर्त पर संतानहीन स्त्रियाँ पहली नजर में ही मातृत्व जैसे परम पद से छँटकर रह जाती हैं और बाकी को सहज रूप से मातष्त्व का गौरव उपलब्ध हो जाता है। लेकिन वास्तव में यह एक नितांत सतही मान्यता है। जैसे गुरु बनने से गुरुत्व और शिष्य बनने से शिष्यत्व, भाई होने से भ्रातृत्व, पुत्र को पुत्रत्व, पति या पत्नी बनने पर पतित्व या पत्नीत्व भाव भी आ जाना जरूरी नहीं है, वैसे ही माता बन जाने पर मातृत्व भी स्वयमेव प्राप्त हो ही जाए - यह आवश्यक नहीं है। ठीक है कि मातृत्व को बाकी की तरह तौला नहीं जा सकता। माता की तुलना किसी अन्य रिश्ते से नहीं की जा सकती। संसार में यही दिखता रहा है कि पुत्र ही कुपुत्र साबित होता है, माताएँ कुमाता नहीं बनतीं या अपवादस्वरूप ही बनती हैं?

आजकल माताओं के कुमाता बनने की खबरें भरपूर सामने आ रही हैं और धीरे-धीरे इनकी संख्या बढ़ती जा रही है। एक से बदतर एक घटना, जिससे न केवल मातृत्व बल्कि पूरा समाज कलंकित होता है। बच्चा चुराना, बच्चे को लावारिस छोड़ देना, सीढ़ियों से फेंक देना, गला घोंटकर मार देना, पारिवारिक विवाद में बच्चे को प्रताड़ित करना, इश्क के चक्कर में बच्चे का कत्ल करना-कराना तथा धन-संपत्ति व तथाकथित प्रेम-संबंध निभाने के लिए संतान की हत्या जैसी घटनाएँ दिनोंदिन बढ़ती जा रही हैं। कन्या भ्रूण हत्या, अवैध भ्रूण-संतान हत्या आदि तो आम बात है ही। इन घटनाओं को देखकर कभी नहीं कहा जा सकता कि माता कुमाता नहीं हो सकती। अत्यल्प ही सही, इस मिथ के उदाहरण सदा से मिलते रहे हैं। मैथिली शरण गुप्त ने 'साकेत' में स्वयं कैकेयी के मुख से कहलवाया है -

कहते आते थे यही सभी नरदेही,
माता न कुमाता, पुत्र कुपुत्र भले ही।
अब कहें सभी यह हाय! विरूद्ध विधाता,-
है पुत्र पुत्र ही, रहे कुमाता माता।

महाभारत के कर्ण और शिशुपाल के चरित्र से कौन परिचित नहीं है। चेदीनरेश शिशुपाल का जन्म विचित्र रूप में लगभग राक्षस की तरह तीन ऑख और चार हाथ के साथ हुआ था। इससे दुखी उसकी माँ श्रुतश्रवा ने नवजात को फेंकवाना चाहा, लेकिन तत्काल आकाशवाणी हुई कि इसे मत फेंको, यह बालक बहुत पराक्रमी राजा होगा। माँ ने यह बात मान ली और लगे हाथ पूछ लिया कि आपने यह बताकर इसकी प्राण रक्षा कर दी तो कष्पा करके यह भी बताते जाइए कि जिस बालक का जन्म इस प्रकार हुआ है, उसकी मष्त्यु कैसे होगी? इस पर उत्तर मिला कि जिसकी गोद में जाते ही इसका तीसरा नेत्र खत्म हो जाएगा, उसी के हाथों इसका वघ होगा। बालक के जन्म का समाचार सुनकर लोग देखने आने लगे।

इसी सिलसिले में कष्ष्ण और बलराम भी आए। कृष्ण की गोद में जाते ही शिशुपाल का तीसरा नेत्र नष्ट हो गया। उसकी मॉं ने कृष्ण से कहा कि यह तुम्हारा फुफेरा भाई है और तू इसकी हत्या करेगा? इस पर कृष्ण ने पूछा कि यह किसने बताया? श्रुतश्रवा ने कहा कि जन्म के समय यही आकाशवाणी हुई थी। इस पर कृष्ण ने कहा कि माता होकर भी आपने जन्म की खुशी के अवसर पर मष्त्यु का कारण क्यों पूछा? अच्छा होता यदि आप जीवन के इस रहस्य को न जानतीं। दूसरी तरफ, कर्ण को उसकी कुंती जैसी मॉं ने बहवा दिया था। बहुत बाद में महाभारत युद्ध के आरंभ से ठीक पहले जब कुंती ने स्वयं जाकर अपनाना चाहा तो कर्ण का मातष्त्व पर व्याख्यान काबिलेगौर था। दिनकर जी के शब्दों में -

उमड़ी न स्नेह की उज्ज्वल धार हष्दय से
तुम सूख गई मुझको पाते ही भय से,
पर राधा ने जिस दिन मुझको पाया था
कहते हैं उसको दूध उतर आया था।

कुंती मॉं बनकर भी कर्ण के संदर्भ में मातृत्व से वंचित है, दूसरी ओर अधीरथ की राधा बिना पुत्र जने भी मातृत्व जैसे विराट भाव से युक्त है। वास्तविकता भी यही है कि मातृत्व से जुड़े दायित्वों को यथासंभव निभाने का ईमानदार प्रयास करना जरूरी है, पर उससे भी ज्यादा जरूरी किसी भी स्थिति में इससे जुड़ी मर्यादाएँ तोड़ने और प्रतिकूल आचरण करने की लगातार हेठी शोभनीय, दर्शनीय, ग्रहणीय नहीं बनाना है।

रिजल्ट से पहले और बाद में

परीक्षा संपन्न होने से लेकर परीक्षा-फल निकलने तक का समय विद्यार्थी के लिए कौतूहल, उमंग और आशाओं-आकांक्षाओं से भरा होता है। मन में कई तरह के भाव, विचार, सपने घुमड़ते हैं। परीक्षा-फल तो परीक्षा-फल है। परीक्षा संपन्न होने के बाद वह परीक्षार्थी के हाथ से निकलकर परीक्षक के अधिकार-क्षेत्र में चला जाता है। कुशाग्र बुद्धि के विद्यार्थी की भी परीक्षाएँ कितनी ही अच्छी हुई हों, मन में आशंकाओं के बादल उमड़ने स्वाभाविक हैं। परीक्षा और उसके परिणाम के बीच का यह समय बड़ा महत्त्वपूर्ण होता है। इसके समुचित उपयोग से बाल जीवन ही नहीं, वरन् पूरी जिंदगी जीने के लिए मानसिक मजबूती एवं समर्षद्धि हासिल हो सकती है और भविष्य की कठिनाइयों से जूझने के लिए प्रतिरोधक सामर्थ्य बढ़ सकता है। यों इस दरम्यान विद्यार्थी परीक्षा के दबाव से मुक्त होकर थकान उतारता है; राहत, आराम और चैन-सुकून का अनुभव करता है। यह उचित है कि वह पढाई-लिखाई से इतर तात्कालिक रूप से बाकी सारे काम निबटाए, घूमे-फिरे, खेले-कूदे, मौज-मस्ती करते हुए रुचिकर, पर हितकर मनोरंजन करे।

बचपन की याददाश्त काफी अच्छी होती है। पंद्रह-सोलह की उम्र तक पढ़े-समझे व कंठस्थ किए तथ्य, तर्क, विचार सारी उम्र याद रहते हैं, जबकि बाद का पढ़ा समझ-शक्ति बढ़ने के बावजूद जरूरत समाप्त होते जाने के साथ प्रायः जेहन से ओझल होता जाता है। वही चीजें ध्यान में रह जाती हैं, जो बचपन की होती हैं या फिर हमेशा उपयोग में रहती हैं। इसलिए बालमन की इस शक्ति को पहचान कर अभिभावक व शिक्षक से यह उम्मीद की जाती है कि वे भावी जीवन के लिए उपयोगी लगने वाली चीजों को बालक के मन-मस्तिष्क में आत्मसात कराने का प्रयत्न करें। स्वयं बालक को इस बात का बोध या एहसास होना अधिक उपयोगी होगा। उतीर्ण होने पर पिछली कक्षा और विद्यालय से हर्ष-आनंद भरे विछुड़न का गम लिए अगली कक्षा व विद्यालय, महाविद्यालय में जाने की उत्सुकता रहती है। चूँकि छात्र फिर कभी निवर्तमान कक्षा में नहीं बैठ पाएगा, इसलिए यदि पिछली कक्षा की कोई

चीज समझ से बाहर रह गई हो तो उन दीर्घोपयोगी तत्वों-तथ्यों को याद कर समझ लेना आवश्यक होता है। पाठ्यक्रम में आयु और वर्ग के अनुरूप क्या पढ़ना-पढ़ाना है - इसका पूरा ख्याल रखा ही जाता है, फिर भी पाठ्यक्रम की हो या उससे बाहर की, जीवनोपयोगी बातों को सिखाना बड़ा काम का साबित होता है।

अनुतीर्ण करने पर बालमन को आघात लगता है, किंतु आजकल फेल का गम कम, परीक्षा में कम नंबर कम रह जाने की कसक ज्यादा परेशान करती है। पढ़ना या कोई काम करना हमारे वश में हो सकता है, लेकिन उसका परिणाम अपने हाथ में नहीं होता। इसलिए रिजल्ट मनमाफिक ही हो - जरूरी नहीं है। यह आशाओं-आकांक्षाओं से तय नहीं होता, यहाँ तक कि परिश्रम, परफार्ममेंस के सदैव उचित मूल्यांकन का कोई विधि-विधान नहीं है। अच्छे रिजल्ट पर खुशी तथा खराब पर दुख होना लाजिमी है, लेकिन एक सीमा से ज्यादा यह ठीक नहीं है। परीक्षा में कम नंबर लाने वालों ने ही नहीं, लगातार कई-कई परीक्षाओं में असफल होने वालों तक ने दुनिया के इतिहास में ऐसे-ऐसे कार्य किए हैं, जैसे कार्य टॉपरों ने आज तक नहीं किए। अक्सर अनुतीर्ण होते रहने वाले एक विद्यार्थी की सफलता का चित्रण करते हुए एडमंड कैपुर ब्रोड्स ने लिखा है -''एक युवक ऐसा था जो स्कूल में बड़ा ढीला-ढाला और अयोग्य विद्यार्थी था। कक्षाओं में अनुपस्थित रहता और बहुत कम पास हो पाता। उसने सेना में भर्ती होने की कोशिश की, पर डॉक्टरी जाँच में रह गया। बहुत प्रयत्न करने पर भी उसे सफलता नहीं मिली। कुछ दिनों बाद न जाने किस विध से वह भर्ती हो गया। यह खबर सुनकर हमने सोचा कि कुछ दिनों में वह अंग-भंग होकर लौट आएगा। किंतु युद्ध के भयंकर मोर्चे पर उसने जो साहस दिखाया, उसे सुनकर हम सब दंग रह गए। उसने जलते बम को उठाकर नाके से दूर फेंका और गोलियों की बौछार के बीच कुछएक साथियों की जान बचाई। यह वही युवक था, जो कुछ दिन पहले तक निरुत्साही, निकम्मा और असफल समझा जाता था।'' इसी प्रकार अमेरिका के राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने निश्चय कर रखा था कि भले ही कुछ भी हो जाए, उन्हें अपने कार्यों तथा प्रयत्नों में सफलता मिले या न मिले, लोग भले ही उनके विरोधी बन जाएँ और उन्हें अपना सब कुछ खो देना पड़े, लेकिन वे अपने आदर्शों-सिद्धांतों पर सदैव अडिग-अटल बने रहेंगे और इसी दष्ढ़ता की बदौलत रूजवेल्ट की ईमानदारी न केवल अमेरिका में, बल्कि पूरे विश्व के इतिहास के स्वर्णिम पष्ष्ठ पर अंकित है।

भगवद्गीता में श्रीकष्ष्ण ने बताया है कि दुखों के आने पर उद्वेग-शोक से मुक्त और सुखों की प्राप्ति पर सर्वथा निस्पष्ह यानी इच्छारहित हो जाने वाले व्यक्ति की बुद्धि स्थिरबुद्धि कहलाती है। इस बुद्धि को अर्जित करना ही असली पढ़ाई है -

दुखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेसु विगतस्पष्हः।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते।।

दशरथ की मष्त्यु पर मुनि वशिष्ठ भरत को समझाते हैं -

सुनहु भरत भावी प्रबल, बिलख कहेउ मुनिनाथ।
हानि लाभ जीवन मरन, जस अपजस बिधिहाथ।।

अर्थात् कुछ चीजें जैसे लाभ-हानि, जीवन-मरण, यश-अपयश अपने चरम-उदात्त रूप में लाख चाहने-करने पर भी एक या अनेक मनुष्यों के अध ीन नहीं हो सकता। आदमी का वश उसके क्षुद्र रूप पर ही चलता है। इसलिए दवा से आगे दुआ की जरूरत पड़ती है, यह दुआ ईश्वरीय शक्ति के यहाँ तो काम आ सकती है, पर आज के आदमी और उसकी लौकिक सत्ता के समक्ष इसका प्रभाव लगभग नहीं होता। इसलिए परिणाम से विचलित नहीं होना चाहिए और न ही पढ़ाई-कर्म में अन्यमनस्कता दिखानी चाहिए।

मानव तस्करी का मकड़जाल

संजय मिश्र

कोई दस-बारह साल पहले की बात है। पहला मोबाइल खरीदा था। इंतजार में रहता कि कहीं से कोई फोन आए और बात करूँ। एक दिन सुबह-सुबह पाँच बजे ही एक फोन आया जसीडीह संथाली (देवघर, झारखंड) से। ''कृसंजुआ बोल रहा है।'' मैंने कहा संजय बोल रहा हूँ बोलिए। कृजुलिया कहाँ है? बात कराओकृयहाँ से नौकरी कराने, यह बोलकर ले गया कि हर सप्ताह बात कराएँगे। चार महीना हो गया, न तो एक बार बात ही कराये हो और न कोई पैसा-कोड़ी भेजे होकृकहाँ है वह, जल्दी बात कराओ। मैं हक्का-बक्का रह गया। मैंने कहा, आपको कोई गलतफहमी हो गई है, मैं किसी जुलिया या आपको नहीं जानता हूँ। उसने कहा, हाँ रे, हमीं को सिखा रहे हो, हमर बेटिया को ले गया यह नंबरवा देकर और वहाँ जाकर संजय बन गया और अंगरेजी बतियाने लगा हैकृ बहुत ज्यादा बूथ में पैसा उठ रहा हैकृजल्दी बात कराओ।'' मैं समझाने का प्रयास करता रहा। फिर फोन काट दिया, परंतु पुनः तुरंत फोन आ गया, अबकी कोई महिला थी, कृहम तुम्हारा क्या बिगाड़े हैं, तोहरो बहिन बेटी है। मैं परेशान हो गया कहा, देखिए आपने गलत जगह फोन किया है। उसके बाद उस महिला के मुँह से माँ-बहन की ऐसी धाराप्रवाह गालियाँ फूटीं कि यहाँ लिखना संभव नहीं है। मैंने फोन काटा। परंतु दूसरे दिन फिर उसी समय किसी दूसरे बूथ से पहले जुलिया से बात करने के लिए गिड़गिड़ाना, फिर अनेक धमकियाँ और गालियों की बौछार! यह सिलसिला करीब महीनों तक चला। किसी ने उसके यहाँ से लड़की को किसी बड़े घर में काम के लिए लाकर उन लोगों को कोई और नंबर थमा दिया था, जो दुर्योग से मेरा था। यह तो बाद में पता चला कि यह गरीब आदिवासियों को काम के नाम पर फँसाकर लड़कियों को लाने का बड़े गोरखधंधे का ही हिस्सा है।

ताजा घटना पश्चिम बंगाल निवासी १६ वर्षीय लूसी (बदला हुआ नाम) को पिछले माह उसके नियोक्ता ने वेतन माँगने पर बुरी तरह पीट-पीटकर मरणासन्न कर दिया। किसी तरह लूसी ने पुलिस से संपर्क साधा। लूसी ने १६ दिसंबर को अस्पताल में दम तोड़ दिया। पुलिस मरियम नाम की महिला को गिरफ्तार किया, जो प्लेसमेंट एजेंसी चलाती है। उसी ने लूसी को मुखर्जी नगर स्थित व्यवसायी अतुल लोहिया के घर भेजा था। जब पुलिस ने लूसी के कार्यालय में छापा मारा तो करीब २०३ लड़कियों की तस्वीरें और फर्जी पतों वाला एक रजिस्टर तथा फार्म मिले। वरिष्ठ पुलिस अधिकारी के अनुसार मरियम ने बताया है कि इन लड़कियों के बारे में उसे खुद भी नहीं पता कि वे आज किस हाल में हैं। पता नहीं वे लड़कियाँ एक हाथ से दूसरे हाथ और फिर इसके आगे कितने हाथों से बिकती हुई किस परिणति को प्राप्त हुई होंगी।

लूसी की माँ ने रोते हुए बताया कि दो लोग उसकी इकलौती बेटी को तीन साल पहले मालदा से यह कहकर ले आए थे कि हर महीने दस हजार रुपये उसे भेजा जाएगा, परंतु आज तक न एक पैसा भेजा, न ही लाख कोशिशों के बावजूद कोई जानकारी, सिवाय गाली की। उसने बताया कि घर में चार लोगों का परिवार है और खेती के लिए एक बीघा से भी कम भूमि है, हर साल बाढ़ आती है। ऐसे

हालात में मरियम और एक स्थानीय आदमी उसके पास आए और घरेलू काम-काज कराने के नाम पर बहुत जोर-जबरदस्ती करके उनकी बेटी को ले गए।

लूसी के साथ जो हुआ, उससे भी बदतर हालात एक नहीं बल्कि हजारों आदिवासी लड़कियों के साथ लगातार दसकों से बंगाल, झारखंड़, उड़ीसा, बिहार, असम उत्तराखंड, यहाँ तक कि नेपाल और बांग्लादेश तक से घरेलू काम कराने के नाम पर लाया जाता रहा है। इन कार्यों में लगी दर्जनों प्लेसमेंट एजेंसियाँ तथा उसके दम पर पलने वाले स्थानीय दलाल अधिकांश को जिस्मफरोशी के धंधे में झोंक रहे। हैं। अनेक समाचार चैनलों तथा पत्र-पत्रिकाओं ने अनेक बार दिल्ली के कई मुहल्लों में बने अनेक प्लेसमेंट एजेंसियों के संचालकों एवं दलालों के काले-कारणामों को उजागर किया है कि वे किस तरह भेड़-बकरियों की कीमत पर मानव तस्करी कर उन्हें पंजाब, हरियाणा से लेकर विदेशों तक में जिस्मफरोशी के लिए भेजते हैं।

कुछ महीने पहले राजधानी दिल्ली के नई दिल्ली रेलवे स्टेशन से सटे पंत मार्ग पर जिस तरह अफाक हुसैन और उसकी पत्नी सायरा बेगम ४० कमरों में २५० से ज्यादा लड़कियों को मुक्त कराया। यहाँ इन्होंने दर्जनों कोठे बना रखे थे और उसमें ११ से १७ साल की बच्चियों शारीरिक धंधा इन दड़बों में जिन अमानवीय तरीकों से करवाते रहे, वह दिल को दहला देने वाली है। इस दंपती की घोषित संपत्ति १०० करोड़ से ज्यादा है। पुलिस की कर्तव्यनिष्ठता का यह आलम रहा है कि यहाँ तैनात साठ से ज्यादा पुलिसकर्मियों का दसियों सालों से कहीं दूसरे जगह तबादला तक नहीं हुआ। सोच सकते हैं कि शासन व्यवस्था का इस धंधे को बढ़ाने में कितना याराना रिश्ता रहा है।

मानव तस्करी पर एटसेक, झारखंड चैप्टर और भारतीय किसान संघ के आंकड़ों के मुताबिक हर साल १२ से १४ हजार लड़कियाँ अवैध तरीके से दिल्ली जैसे महानगरों में ले जाई जाती हैं। २०१० तक ४२ हजार लड़कियाँ मानव तस्करी का शिकार हो चुकी है जबकि इस अवधि में नेशनल क्राइम रिकार्डस ब्यूरो का आँकड़ा ३३,००० का है। ध्यान देने की बात है कि यह आँकड़ा सिर्फ झारखंड का है, वह भी २०१० तक का ही। उपर बताये अनेक राज्यों के आँकड़ों को अगर मिलाया जाए तो संख्या लाखों में पहुँचेगी। इससे पता चलता है कि यह परिदष्श्य कितना भयावह है।

मानव तस्करी पर एटसेक, झारखंड चैप्टर और भारतीय किसान संघ के आंकड़ों के मुताबिक हर साल १२ से १४ हजार लड़कियाँ अवैध तरीके से दिल्ली जैसे महानगरों में ले जाई जाती हैं। २०१० तक ४२ हजार लड़कियाँ मानव तस्करी का शिकार हो चुकी है जबकि इस अवधि में नेशनल क्राइम रिकार्डस ब्यूरो का आँकड़ा ३३,००० का है। ध्यान देने की बात है कि यह आँकड़ा सिर्फ झारखंड का है, वह भी २०१० तक का ही। उपर बताये अनेक राज्यों के आँकड़ों को अगर मिलाया जाए तो संख्या लाखों में पहुँचेगी। इससे पता चलता है कि यह परिदृश्य कितना भयावह है।

यह कैसी विडंबना है कि हमारे पास मानव तस्करी के लिए कड़े कानून हैं। राजधानी दिल्ली में अपने आपको सबसे चौकस एवं चाक-चौबंध मानने वाली पुलिस है। केन्द्र एवं राज्यों में गरीब एवं आदिवासियों को सबसे अधिक हितैषी मानने वाली राज्य सरकारें हैं। हजारों की संख्या में समाजसेवा के नाम पर चलने वाली स्वैच्छिक संस्थाएँ हैं। फिर भी इन गरीब मासुमों को जानते-बूझते दर्दनाक मौत के मुँह में धकेला जा रहा है। इसे अंधेरगर्दी नहीं तो और क्या है? आवश्यकता है कि सभी संबंधित राज्य सरकारें इनके लिए विशेष योजनाएँ चलाकर इन्हें गरीबी नामक महामारी से मुक्त कराएँ तथा शासन एवं पुलिस मानव तस्करी के इस मकड़जाल को तत्काल नष्ट करे। इस कोढ़ से मुक्त हुए बिना हम कभी सशक्त एवं विकसित भारत की कल्पना नहीं कर सकते।

अकथ अलेख' : विशिष्ट कथ्य-लेखों का संग्रह

राकेश कुमार

डॉ. ओम प्रकाश शर्मा की पुस्तक 'अकथ अलेख' विशिष्ट कथ्य-लेखों का संग्रह है, फिर भी इसका नाम 'अकथ अलेख' रखा गया है। अकथ का मतलब अनकहा व अकथनीय जगजाहिर है, लेकिन अलेख का अर्थ अलिखित व अलेखनीय ही नहीं होता, यह अगणित, अज्ञेय, अदृश्य, अलक्ष्य, निस्सीम और निराकार देवसत्ता-ब्रह्मसत्ता तक को भी संकेतित करता है। सवाल है कि यहाँ अकथ अलेख का कौन-सा अर्थ अभीष्ट है? इसके लिए पुस्तक की भूमिका 'आत्म-साक्ष्य' पर दृष्टि डालनी आवश्यक है -''जो गहरा, निगूढ़ व अदृश्य रहते हुए भी काम का है, महसूस होता है कि वह अभी पहुँच से बाहर रह गया है। उसी अकथ अलेख तक ले जाने में यह 'अकथ अलेख' पुस्तक उपयोगी भूमिका निभाए - हमारे लिए भी और आपके लिए भी, यही अनिवार्य कामना है।'' इस प्रकार अलेख के लगभग सारे भाव नामकरण में समाहित हैं। भूमिका में अति संक्षिप्त, स्पष्ट वक्तव्य पढ़ लेने के उपरांत लेखक की मंशा समझने में देर नहीं लगती। एक जिज्ञासु पाठक के नाते हमें भी पहुँच से बाहर रह गए उस अकथ अलेख को जानने का इंतजार रहेगा। बहरहाल, पुस्तक में पचपन लेख हैं, जिन्हें चार भागों - वैचारिकी, साहित्यिकी, सामयिकी एवं आत्मिकी में विभाजित किया गया है। इनमें से चौदह-पंद्रह लेख चिंतन की गहराई और सुगठित गद्य भाषा-शैली के कारण अच्छे निबंधों की श्रेणी में रखे जाने योग्य हैं। समय-समय पर प्रकाशित हुए सामाजिक सरोकारों से जुड़े शेष लेख पुस्तक के कलेवर व आकार देने की दृष्टि से कृति का हिस्सा बने हैं। ओम प्रकाश जी की लेखनी लोकहित के मामलों और स्वयं भोगे यथार्थ को व्यक्त करने में चूकती कहाँ है। लेखक-विचारक के नाते वे बेहद सजग होकर सदैव मुखर रहे हैं, 'युगसेतु' पत्रिका के संपादक के तौर पर नियमित संपादकीय व लेख लिखने के अभ्यस्त रहे हैं। कम समय में इसे श्रेष्ठ साहित्यिक-वैचारिक पत्रिका बनाने व कम मूल्य पर पाठक वर्ग तक पहुँचाने के उनके उद्यम का प्रभाव हम सबने देखा है। इधर कुछ समय से यह पत्रिका छपकर नहीं आ रही है। ऑनलाइन संस्करण की नियमितता के बावजूद बहुत कम लोग इसका आस्वादन कर पाते हैं। वित्तीय कारणों से लघु पत्रिकाएँ अनियतकालीन हुआ करती हैं, 'युगसेतु' भी इसी तरह के दुर्दैव का शिकार हुई और इसके उत्सुक व गंभीर पाठक मन मार के बैठे रहे हैं फिलहाल। यह जिक्र आवश्यक है क्योंकि 'युगसेतु' में छपे लेखों का ही 'अकथ अलेख' में प्रभुत्व है। इस पुस्तक का बीजकारक 'युगसेतु' कहने में मुझे तनिक भी संकोच नहीं है।

'अकथ अलेख' लेखों का संग्रह मात्र नहीं है। हिंदी के एक उदीयमान निबंधकार के रूप में यह ओम प्रकाश शर्मा जी को प्रस्तुत करती है। इसके उत्कृष्ट निबंध अपना चिरस्थायी प्रभाव छोड़ते हैं और भाषा की प्रौढ़ता को दर्शाते हैं। वे आगे भी अपने लेखन को नया आयाम देने में समर्थ होंगे, हिंदी जगत को कुछ खास देंगे - ऐसा इस कृति को देखकर धारणा बनती है। फिर भी अधिक से अधिक लिखने की बजाय श्रेष्ठ व उत्कृष्ट गद्य लिखने का बीड़ा उठाना ही उनके जैसे व्यक्ति के लिए उचित होगा। कम लिखने वालों ने भी दुनिया को बहुत कुछ दिया है। वाल्मिकी और होमर भी कोई हर साल नई किताब थोड़े ही लिखते थे। पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, अध्यापक पूर्ण सिंह, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, चंद्र कुँवर, कपाली शास्त्री, अनामिका आदि ने घनघोर लेखकीय घमासान कभी नहीं मचाया। 'अकथ अलेख' पुस्तक निबंध संग्रह जैसी बन पड़ी

है, तो कहीं-कहीं लेखमाला लगती है। लेखक ने सैद्धांतिक रूपाकार में ढालकर आपबीती-जगबीती को कहने में बेबाकी दिखाई है। जीवन में जो कुछ घटित होता है, वह कमोबेश अपना प्रभाव छोड़ता चलता है। यह अलग बात है कि सब लोग अपनी प्रतिक्रिया अपने-अपने ढंग से व्यक्त करते हैं। यही खास अंदाज कुछ को रास आता है, भाता है और कुछ को भदेस लगता है। जब हम किन्हीं जीवनानुभूतियों को वस्तुनिष्ठ ढंग से व्यक्त करते हैं तो यह एक किस्म का समाजशास्त्र गढ़ने, उसका सैद्धांतिक आधार निर्मित करने में सहायक होता है। मानवीय संवेदना और आत्मिक वाणी से सराबोर लेखन युग-युग का सच्चा साक्ष्य बनता है। डॉ. ओम प्रकाश शर्मा ने इस पुस्तक में यही तो किया है। अन्याय, दमन, शोषण, व्यभिचार, भ्रष्टाचार तथा आम आदमी के तिरस्कार से क्षुब्ध और रोष से भरकर लेखक निहित स्वार्थी ताकतों का बखिया उधेड़ता है, उनकी चालबाजियों से आगाह करने में सदा तत्पर दिखता है। न जाने क्यों इस पुस्तक को पढ़ने के बाद डॉ. ओम प्रकाश शर्मा मुझे एक महत्त्वाकांक्षी रचनाकार लगे हैं, हालाँकि मेरे कुछ अन्य लेखक मित्रों की भाँति उन्हें छपास की बीमारी नहीं लगी है। वे सामाजिक मुद्दों व सार्वजनिक मामलों पर अपनी राय देने में आगे बने रहने और पाठक समुदाय को किसी विध प्रभावित करने का यत्न करते दिखते हैं। युवकोचित उत्साह और उमंग तो है ही, हालाँकि वे लेखक के रूप में सदैव अनुशासन व अभ्यास के हामी भरते दिखते हैं। अब उन्हें नियमित लेखन की आदत-सी पड़ गई है; या यों कहें कि वे बिना लिखे चुप नहीं रहने वाले समूह का हिस्सा बन चुके हैं।

'अकथ अलेख' के प्रथम भाग 'वैचारिकी' में तीसरे लेख से लेकर दसवें तक तथा अठारहवें लेख का उल्लेख आवश्यक लगता है। 'अकथ कहानी प्रेम की', 'सौंदर्य कहाँ नहीं है और कहाँ है', 'क्यों नहीं होता ज्ञानी को भय', 'क्या कहता है कर्म का मनोविज्ञान', 'यात्रा : अंदाज अपना-अपना', 'कूड़ा और कुत्ता' आदि लेखों को सुंदर सुगठित निबंध मानने से परहेज नहीं होना चाहिए। 'कैसी होती है सत्य की विजय' में सत्य और असत्य के सार्वकालिक द्वंद्व पर सामयिक व ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्यों का उल्लेख करते हुए बहुत अच्छी तरह अपनी बात कही है। 'अकथ कहानी प्रेम की' में प्रेम के सांगोपांग निरूपण में उनकी सिद्धहस्त लेखनी की परिपक्वता देखते ही बनती है -''आधुनिक अर्थ वाले प्रेम भाव का जैस-जैसे प्रचार-प्रसार और फैलाव हो रहा है, वैसे-वैसे वास्तविक प्रेम का संकुचन हो रहा है, परिवार व समाज में समस्याएँ बढ़ रही हैं। इसका अर्थ हुआ कि प्रेम कहा जाने वाला भाव प्रेम है ही नहीं, अन्यथा कोई कारण नहीं कि समाज में समस्याएँ बढ़ें। अकेले प्रेम में इतनी ताकत है कि सारी समस्याएँ खत्म हो जाएँ, किंतु यह अपनी पूर्णता में उदित हो तब।'' लेखक ने दार्शनिक उद्धरणों, कविताओं व शेरों के द्वारा साहित्यिक प्रेमगंगा बहाने का यत्न किया है। हिंदी कविता और पौराणिक ग्रंथों विशेषकर भगवद्गीता से पूरी पुस्तक में उद्धरण दिए गए हैं, सो यहाँ भी प्रसंगानुकूल श्लोकों को उद्धृत कर मंतव्य को स्पष्ट किया गया है। 'सौंदर्य कहाँ नहीं है और कहाँ है' निबंध की जितनी सराहना की जाए, कम है। यह लेख बाबू श्यामसुंदर दास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, बाबू गुलाब राय की ललित, मनोहारी परंपरा का सुंदर नमूना बन पड़ा है। निबंध के अंत में निष्कर्ष रूप में दिए कथन को देखिए -''मान लीजिए, किसी के पास अद्भुत वक्तृत्व कला है, पर व्यवहार विकृत, तो उसकी वाणी भी व्यवहार के अभाव में असुंदर ही होगी। इसी प्रकार लेखन अच्छा हो, पर व्यवहार विपरीत, तो इन्हें लेखन की सुंदरता और व्यवहार की असुंदरता कहने मात्र से काम नहीं चलेगा। अंततः व्यावहारिक विपरीतता के कारण लेखन भी सौंदर्यहीन ही माना जाएगा और जहाँ ऐसी किसी भी प्रकार की सौंदर्यहीनता होगी, वहाँ उसका प्रभाव नगण्य होगा।'' 'दृश्य एक तो दृष्टि भेद क्यों' लेख दार्शनिक व दुरूह-सा लगता है यद्यपि लेखक ने इस जटिल विषय के सटीक व्याख्या-विश्लेषण का श्लाघ्य

प्रयास किया है, जिसकी कुछ बानगी काबिलेगौर है –''आज भी समाज में जितनी दुर्घटनाएँ होती हैं, वे सब आँखवालों द्वारा आँखवालों की ही होती हैं। नेत्रहीन लोगों का एक्सीडेंट प्रायः नहीं होता।'' वे आगे कहते हैं –''तर्क भी होते नहीं, बल्कि गढ़े जाते हैं। जो करना हो और जो न करना हो, दोनों के लिए तर्क खोजे, गढ़े जा सकते हैं।'' कितना बड़ा रहस्यात्मक यथार्थ है यह। इसी प्रकार द्रष्टा एवं दृश्य के संबंधों का उद्‌घाटन कुछ यों करते हैं –''दृश्य तो दृश्य है, वह अपने स्तर पर भेद विकसित नहीं कर रहा है, हालाँकि हर चेतन दृश्य के संबंध में यह बात सही नहीं है। दृश्य भी स्वयं दृष्टि-संपन्न होता है, वह इसका पूरा-पूरा ध्यान रखता है कि कौन उसे देखे और कौन न देखे, कैसे देखे और कैसे न देखे। दृष्टि का आलंबन सभी देखने वालों के लिए एक समान हो भी, तब भी यह समानता उपलब्धता के संदर्भ में सुलभ संभव नहीं है।'' परंतु यह लेख साधारण पाठक को पांडित्यपूर्ण व गूढ़ लग सकता है।

'साहित्यिकी' खंड में शामिल सभी लेख लेखक की साहित्यिक अभिरुचि, अध्ययन-मननशीलता व शोधक प्रवृत्ति के प्रमाण हैं। 'साहित्य : सत्य का स्वैच्छिक प्रयोग', 'नारी स्वातंत्र्य और भोजपुरी लोकगीत', 'हिंदी साहित्य का इतिहास और नामकरण संस्कार', 'अद्‌भुत सत्यरथी राम' और 'भाग्य बली या पुरुषार्थ' आदि सांस्कृतिक-साहित्यिक भावधारा के विकास के क्रम में डॉ. शर्मा की समझ को इंगित करते हैं। 'सामयिकी' खंड के आधे से अधिक लेख स्तरीय, बेहतरीन हैं। बत्तीसवें से चालीसवें तक का क्या कहना! 'समाज का मानक क्या है,' 'व्यवस्था में बदलाव की चुनौतियाँ', 'वसुधा अखंड है', 'लोकतांत्रिक मानस की विवशता', 'उपयोगितावादी चिंतन की अनुपयोगिता', 'अनारक्षित मानसिकता', 'कोई नहीं तो कौन' आदि लेख काफी अच्छे बन पड़े हैं। 'चुनाव : लोकतंत्र का महापर्व' में आत्मिकी का सामयिकी में घुसपैठ हो गया है। लेकिन इस भाग के सारे लेख अपने समय के संक्षिप्त, सटीक समसामयिक दस्तावेज हैं, जहाँ साक्षी भाव से घटनाओं का लेखा-जोखा है। 'आत्मिकी' खंड का एकमात्र लेख 'महिला महाविद्यालय में अध्यापन के पाँच साल' उनकी आपबीती है। इसमें ओम प्रकाश जी की किसी भी कीमत पर अपने उसूलों से न डिगने वाले इंसान की छवि उभरती है। यदि रास्ते सही हों, तो बड़ी से बड़ी प्रायोजित कठिनाई भी सामने से अधिक कुछ नहीं कर पाती, वह तरह-तरह के मुखौटे का आश्रय लेकर ही अपने हथकंडों द्वारा आघात देने के फिराक में रहती है। यह लेख अध्यापन काल के दौरान अध्यापक के आखेट के लिए रचे गए षड्‌यंत्रों से उपजी कटुता और लिखने की विवशता को सामने लाता है, यद्यपि लेखन जैसा गुरुत्व कार्य पूर्णरूपेण कभी किसी विवशता मात्र का परिणाम नहीं होता। डॉ. ओम प्रकाश शर्मा पेशेवर लेखक नहीं हैं, फिर भी अच्छा लिखने का माद्‌दा रखते हैं। उनकी मौलिक रचनात्मकता को देखते हुए मैं समीक्षक-धर्म का उल्लंघन होता जानते हुए भी थोड़े आग्रह से उत्तम गद्य-रचना करने की अपेक्षा उनसे रख रहा हूँ।

'अकथ अलेख' हिंदी की अपनी सधी संस्कारित भाषा और विकासमान व्याकरण का प्रतिबिंब है, जहाँ शुष्क से शुष्क विषय पर सरस लेखन इसक साहित्यिकता व पठनीयता बढ़ाती है। मौलिक मन-मिजाज को संकेतित करने वाली स्पष्ट, प्रवाहमयी और तीक्ष्ण-पैनी तार्किक विचारणाओं में लेखक की व्यावहारिक विद्वता व लेखकीय प्रवीणता ध्वनित है। विचारों की गहनता, गंभीरता के साथ तलस्पर्शी व बहुआयामी दृष्टि और सौंदर्यानुभूति का सर्वांग ज्ञान डॉ. शर्मा की प्रखर प्रतिभा की स्पष्ट झलक दे जाता है; सही मायने में, उनका पूरा परिचय यहाँ मिलता है। बौद्धिक-वैचारिक भूमि की यह पुस्तक पाठ्यपुस्तक के रूप में पढ़ाए जाने और हर घर व पुस्तकालय में होने के बिल्कुल उपयुक्त है। गुजरात सरकार ने अपने यहाँ पुस्तकालयों में इसकी आपूर्ति कराकर प्रशंसनीय पहल की है, इसी प्रकार अन्य संस्थानों-सरकारों और स्वयं पाठक वर्ग को इसकी सुलभता सुगम बनानी चाहिए।

परीक्षा का मौसम

ओम प्रकाश शर्मा

परीक्षा का खौफ किस कदर हावी होता है – इसकी बानगी सुधांशु प्रकाश की साठ साल पुरानी कविता 'हाय परीक्षा' में व्यक्त है –

तेरा आना सुनकर देवी हम काँप-काँप रह जाते हैं
ये लाल टमाटर से चेहरे भय से पीले पड़ जाते हैं।

परीक्षार्थी के नाते थोड़ा-बहुत आशंकित रहना स्वाभाविक है, किंतु आजकल पढ़ाई का बस्ता और परीक्षा के भूत की भयावहता के कारण शत-प्रतिशत पाने वाले होनहार छात्र-छात्राएँ भी एक-आध नंबर कम रह जाने पर आत्महत्या तक कर लेते हैं। परीक्षा से परे जीवन महत्त्वपूर्ण है – इसका एहसास नहीं रहता। इस प्रकार शिक्षा-मेधा के मापने के आधुनिक तरीकों पर प्रश्नचिह्न खड़ा होता है। इसके लिए अभिभावक काफी हद तक जिम्मेदार हैं। परीक्षा नजदीक आने पर पढ़ने-पढ़ाने और बाकी समय बेपरवाह रहने से छात्र, शिक्षक, अभिभावक मानसिक दबाव महसूस करते हैं। नतीजा यह होता है कि परीक्षा-कक्ष में भी छात्र हड़बड़ाहट में जल्दी-जल्दी पढ़ते हैं, जिससे सब गड्डमड्ड या रिमिक्स होकर कन्फ्यूजन पैदा करता है, फिर इससे परीक्षा का खौफ बढ़ता है, इसलिए नियमित दिनचर्या में पढ़ने की रुचि-आदत को विकसित करना जरूरी है। क्या पढ़ना है और कैसे पढ़ना है, कितना याद करना है और कितना समझना है – इसका सही आकलन रखना पड़ता है। परीक्षा के आरंभ से आधा घंटा पहले पढ़ाई रोककर मन स्थिर कर लेना चाहिए, किंतु प्रश्न-पत्र मिलते ही शुरू से अंत तक उसे पढ़ना आवश्यक है। कुछएक बार एक-दो प्रश्नों के उत्तर दूसरे प्रश्नों में छुपे होते हैं। जितने प्रश्नों के उत्तर देने हैं, उनमें समय का समुचित विभाजन करके निर्धारित शब्द-सीमा के आसपास उत्तर लिखना ठीक रहता है। फालतू व कुछ का कुछ उत्तर देने से बचना ही बेहतर है। प्रश्न ऊटपटांग हो सकते हैं, पर अंक निर्धारित होने के कारण उन्हें हल करना मजबूरी का धर्म है। जो नहीं जानते, उसके उत्तर देने में आकलन क्षमता व कल्पनाशीलता की असली परीक्षा होती है। तथ्यों के भरपूर उल्लेख एवं विश्लेषण के साथ शुद्ध-सटीक भाषा में बिंदुवार उत्तर उत्तम है। परीक्षा खत्म होने से पहले पूरी कॉपी पर हर दृष्टि से जैसे क्रमांक, प्रश्न संख्या, उत्तर आदि पर सरसरी निगाह डाल लेनी चाहिए। लिखावट जैसी भी हो, पर साफ-साफ, स्पष्ट लिखना चाहिए। परीक्षा से पूर्व समय-समय पर अपना मूल्यांकन स्वयं करना तथा समय नियोजन के साथ लिखने का अभ्यास करते रहना उपयोगी होता है। जिंदगी में कुछ परीक्षाओं में उत्तर इस प्रकार देने चाहिए, जिसकी स्मृति पर स्वयं भी और परीक्षक को भी सदैव फक्र हो। जो कुछ जानना चाहिए, उसकी एक निश्चित अवधि पर परख ही परीक्षा है। लेकिन सच यह भी है कि चाहे जो पूछा जाए, परीक्षार्थी वही लिखता है, जो वह जानता है। जो जानता है और जो पूछा गया है, उसमें बेहतरीन तालमेल बिठाकर उत्तर देना

जिंदगी में कुछ परीक्षाओं में उत्तर इस प्रकार देने चाहिए, जिसकी स्मृति पर स्वयं भी और परीक्षक को भी सदैव फक्र हो। जो कुछ जानना चाहिए, उसकी एक निश्चित अवधि पर परख ही परीक्षा है। लेकिन सच यह भी है कि चाहे जो पूछा जाए, परीक्षार्थी वही लिखता है, जो वह जानता है। जो जानता है और जो पूछा गया है, उसमें बेहतरीन तालमेल बिठाकर उत्तर देना सर्वोत्कृष्ट परीक्षा-कला है। उत्सव की तरह परीक्षाएँ भी कभी-कभी होती हैं, अतः खौफ-भय के रूप में नहीं, उत्साह के साथ मनोरंजन की तरह इनका लुत्फ उठाना उचित है। परीक्षा की तैयारी में कमी, परीक्षा खराब होने तथा आशा के अनुरूप परिणाम न आने पर हताशा-निराशा में कठोर व अप्रत्याशित कदम नहीं उठाना चाहिए। गॉव-जवार में नौ-नौ, दस-दस बार परीक्षा देकर मैट्रिक पास करने वाले लोग अब भी मिल जाते हैं। कई बार जानबूझकर या लापरवाही की कार्य-संस्कषति के वजह से परीक्षार्थी के साथ बड़ा अन्याय हो जाता है, बढ़िया हुए पेपर में घटिया अंक मिलने पर सदमा लगना स्वाभाविक है, फिर भी दूसरों के अपराध के लिए अपने को क्यों दंडित करना! ऐसे समय श्याम नंदन किशोर की निम्न पंक्तियाँ पढ़कर संतोष कर लेना अच्छा है।

सर्वोत्कृष्ट परीक्षा-कला है।

उत्सव की तरह परीक्षाएँ भी कभी-कभी होती हैं, अतः खौफ-भय के रूप में नहीं, उत्साह के साथ मनोरंजन की तरह इनका लुत्फ उठाना उचित है। परीक्षा की तैयारी में कमी, परीक्षा खराब होने तथा आशा के अनुरूप परिणाम न आने पर हताशा-निराशा में कठोर व अप्रत्याशित कदम नहीं उठाना चाहिए। गॉव-जवार में नौ-नौ, दस-दस बार परीक्षा देकर मैट्रिक पास करने वाले लोग अब भी मिल जाते हैं। कई बार जानबूझकर या लापरवाही की कार्य-संस्कषति के वजह से परीक्षार्थी के साथ बड़ा अन्याय हो जाता है, बढ़िया हुए पेपर में घटिया अंक मिलने पर सदमा लगना स्वाभाविक है, फिर भी दूसरों के अपराध के लिए अपने को क्यों दंडित करना! ऐसे समय श्याम नंदन किशोर की निम्न पंक्तियाँ पढ़कर संतोष कर लेना अच्छा है -

विद्या भी बिकती है नीलाम होती है यहाँ,
काले बाजारियों की ऊँची दूकानों में।
बगुलों को हंस का प्रमाण-पत्र मिलता है,
प्रश्नचिह्न लगता है कितनों के ईमानों पर।

Ekgkdfo vuli % ,d nf"V

MkO mek'kdj 'kDy

^

द्विवेदीयुगीन काव्यधारा के 'सनेही मण्डल' के सर्वोत्कृष्ट कवियों में अग्रगण्य, 'वर्तमान भूषण' की उपाधि ा से विभूषित, विलक्षण उर्वर कल्पनाशक्ति, सहज संवेदनशीलता एवं ओजस्वी काव्यपाठ की भाव–भंगिमाभरी शैली से समन्वित महाकवि अनूप शर्मा का व्यक्तित्व आधुनिक हिन्दी–साहित्य में अपनी एक विशिष्ट पहचान रखता है। पंडित गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' के साथ ही उनके प्रिय शिष्य महाकवि अनूप जी ने हिन्दी कवि–मंचों की परम्परा को प्रतिष्ठित करके हिन्दी–भाषा और साहित्य को जो विस्तार, समर्षद्धि और श्रीवषद्धि प्रदान की, वह निस्संदेह चिन्तनीय और मननीय है। अनूप जी ने सुनाल (खण्डकाव्य), सिद्धार्थ (महाकाव्य), सुमनांजलि (स्फुट संग्रह), फेरि मिलिबो (ब्रजभाषा– चम्पू), शर्वाणी (स्फुट स्तवन), विराट संग्राम (लंबी कविता), वर्धमान (महाकाव्य), अग्निपथ (खण्डकाव्य) एवं गांधी चरित्र (महाकाव्य अप्रकाशित) जैसी स्तरीय काव्य–कषतियों का प्रणयन करके अपनी असाध ाारण प्रतिभा का प्रमाण दिया है। इसके अतिरिक्त उनकी अनेक स्फुट रचनाएँ चाँद, स्वदेश, वर्तमान, प्रताप, माध ुरी, सुधा, सुकवि, काव्यसुधाधर, कवीन्द्र आदि पत्रिकाओं में बिखरी पड़ी हैं जिन्हें सहेजने की आवश्यकता है। 'सुनाल' 208 सवैया–छन्दों में रचित खड़ी बोली का खण्डकाव्य है जिसमें सम्राट अशोक की पत्नी सुलोचना की, सम्राट की बड़ी रानी के पुत्र सुनाल (कुणाल) के प्रति एक देशीय प्रेम की कथा है। इसमें शृंगार की क्षीर्ण धारा के किनारे पितृ भक्ति एवं वात्सल्य के दृढ़ बंध हैं। इस माध्यम से कवि ने नैतिक–सामाजिक मूल्यों के आचरण पर बल दिया है। ग्रंथारम्भ के प्रथम छन्द में ही संसार की विचित्रता के निरूपण के साथ कृति के वर्ण्य विषय की भी सूक्ष्म झलक दे दी है–

''भाल में देखी सुधा जिनके, उनको विष–घूँट भी घूँटते देखा।
धूल में लोटना था जिनको, उनको सुख–सम्पति लूटते देखा।।
जो जकड़े विषयों में रहे, उनका भव–बन्धन छूटते देखा।
फूलते औ फलते तरु के, फल को गिर टूटते–फूटते देखा।।''

इसमें महारानी के आदेश से सुनाल की आँखें निकाली जाने का प्रसंग कई छन्दों में बड़ी मार्मिकता के साथ वर्णित है। उन सभी छन्दों का चतुर्थ चरण एक ही है, जिसमें कार्य और कारण का स्पष्ट उल्लेख है–

''जननी दषा–दोष के कारण से, वे बड़ी–बड़ी आँखे निकाली गईं।''

'सिद्धार्थ' पारम्परिक शास्त्रीय मानदण्डों पर आधारित 18 सर्गों में लाइट ऑफ एशिया (एडमिन अर्नाल्ड), बुद्ध चरित (अश्वघोष तथा आचार्य शुक्ल) की भावभूमि पर संस्कृत–वर्णवृत्तों में प्रियप्रवास की शैली में रचित महाकाव्य है। भाषा प्रलम्ब समासयुक्त, संस्कृतनिष्ठ और शैली इतिवृत्तात्मक है, किन्तु यथास्थान सरसता एवं वाक्‌चातुर्य का सुष्ठु विधान हुआ है। सिद्धार्थ के महाभिनिष्क्रमण के पूर्व क्षणों में सोती हुई परिचारिकाओं के रूपांकन का एक उदाहरण यहाँ द्रष्टव्य है–

''सोती पड़ी अवनि पै परिचारिकाएँ,
है गात्र की न जिनको सुधि वस्त्र की भी।
आधे खुले सुभग मंजु उरोज ऐसे,
जैसे अनूप कवि की कविता लसी हो।।''

'सुमनांजलि' में 15 लम्बी कविताओं के अतिरिक्त प्रकीर्ण कविताएँ हैं। इसमें 381 घनाक्षरियाँ और 38 रोला छन्द हैं। यह कषति अनूप जी की काव्यकला का उत्कष्ष्ट प्रमाण है। यहाँ 'पिंजरबद्ध केसरी' तथा 'मानव–जीवन' विषयक एक–एक छन्द दर्शनीय है–

''याद है कि तुझमें कभी था रोष रुद्र का सा,
चीर ही सा चीरता चमूर का भी चाम था।
इन महलों में नहीं जंगलों में शासन था,
इस पिंजड़ें में न, दरी में तेरा धाम था।
एक गज–गण्ड–गामिनी ही सहगामिनी थी,
यामिनी में दामिनी का गमन गुलाम था।
सोते हुए तुझको जगाना एक वीरता थी,
जागे हुए तुझको सुलाना एक काम था।।''

\+ + +

''जन क्या है? प्राकष्त प्रवषत्तियों का पुतला है,
तन क्या है? मुट्ठी भर हड्डियों का ढेर है।
मन क्या है? प्रीति के निवास करने का कुंज,
धन क्या है? प्रेमराग–माला का सुमेर है।
दुःखद वियोग क्या? संयोग का त्वरा से अंत,
सुखद संयोग क्या? वियोग में जो देर है।
मृत्यु क्या है? जीवन के मद का उतर जाना,
जीवन क्या? कुछ ही दिनों का हेर–फेर है।''

कर्मवीर गाँधी अनूप जी के महान श्रद्धास्पद थे। उनका तद्विषयक यह छन्द अवलोकनीय है–

''पश्चिम के तम का प्रसार पषथिवी पै देख,
पूर्व में सुभाग्य का सितारा बन चमका।
शाका हुआ ऐसा कि सनाका पड़ा भू–तल में,
नाका रुका हिंसा का, धड़का रुका बम का।
ज्ञान–गुदड़ी से सत्याग्रह का निकाला चक्र,
धाम–धाम धैर्य को बँधा के धीर धमका।
कर्मवीर गाँधी! कोई कर्म के भरोसे रहे,
भारत की भूमि को भरोसा तेरे दम का।।''

इसके प्रशंसकों में पं0 कष्ष्णबिहारी मिश्र, नाथूराम शर्मा शंकर, ठा0 गोपालशरण सिंह, डॉ0 नवलबिहारी मिश्र, रामजीदास कपूर, डॉ0 ब्रजकिशोर मिश्र, डॉ0 जगदीश गुप्त प्रभषति विद्वान उल्लेख्य हैं।'फेरि मिलिबो' शीर्षक ब्रजभाषा के चम्पूकाव्य में भागवत् में वर्णित 'प्रभास–क्षेत्र' में 'कृष्ण–गोपी–मिलन' का आठ दिन का प्रसंग आठ अध्यायों में विभक्त है। ये अध्याय उपखण्डों में बँट हैं। कुल उपखण्ड 75 हैं। इसमें गद्य के अतिरिक्त साढ़े 66 रोला छन्द हैं, किन्तु प्रारम्भ राधिका छन्द से हुआ है। कहीं–कहीं रहस्यवाद का भी प्रभाव है–

''दधि तरंग में भरत हाव में भाव महत्ता,
सिद्ध करत जल उमड़ि एक ईश्वर की सत्ता।''

नादमयी भाषाशक्ति, सानुप्रासिकता तथा अभिव्यक्ति–कौशल की दषष्टि से यह उत्कष्ष्ट प्रबन्धकाव्य है। इस पर देव–पुरस्कार भी प्राप्त हुआ था। पंडित शुकदेवबिहारी मिश्र इसके परम प्रशंसक थे।

'शर्वाणी' में 701 स्फुट घनाक्षरियों में महाशक्ति का स्तवन है। किसी एक विषय पर इतने घनाक्षरी किसी भी हिन्दी–कवि ने नहीं लिखे। यह कषति छह अंगों में विभक्त है– स्तुति (100 छंद), चरणार्चन (180 छंद), दषष्टिपात (104 छंद), चक्रचर्चा (100 छंद), मण्डलाग्र–मंडल (101 छंद) और महिसासुर–वध (101 छंद)। इस कषति में भक्ति, वीर, शंष्गार, रौद्र आदि विविधा रसों का प्रभावी रमणीय अंकन है। विशेषकर वीर और शंष्गार के ऐसे सुन्दर 'संकर' अन्यत्र दुर्लभ हैं। इस कषति पर दुर्गा सप्तशती के साथ ही बाण के चण्डीशतक का भी प्रभाव है। प्रचुर शब्द–भाण्डार, अलंकार और रसध्वनि तथा रीति–वक्रोक्ति का सामंजस्य एवं शाक्त, शैव, सांख्य, वेदान्त की भूमिका एवं अलंकष्त व्यंजना–वैविध्य की दषष्टि से यह कषति अनुपमेय है। एक–एक विषय पर शताधिक छन्द लिखना विलक्षण कल्पना के बिना सर्वथा असम्भव है। यहाँ देवी के चरण–वंदन के संदर्भ में अल्प–अलंकार–युक्त तथा 'मण्डलाग्र–मंडल' की कष्पाण विषयक एक श्लिष्ट उत्प्रेक्षा–युक्त निम्नांकित कला–विदग्ध अभिव्यंजना दर्शनीय है–

''एक ही चरण की अनूप एक उँगली की,
एक नख की ही एक किरण पसार दे।''

\+ + +

''आवरण त्याग जुटती है मार मारने को,
देखिए घड़ी ही घड़ीआसन बदलना।

उर में ससेटती है, होती अविचल ना।
अम्ब असि तेरी दषष्टिपात में निपातती है,
रखती है रंचक विपक्षी वीर्य–बल ना।
मानों मदमाती काम–कौतुक दिखाती हुई,
केलि–कला करती फिरंगी बार–ललना।।''

महिष–वध विषयक विश्व–माता का रौद्र रूप इस छन्द में द्रष्टव्य है–

''ऊब ही उठी थी अम्ब क्लेश से त्रिविक्रम के,
खिन्न हो चुकी थी अवसाद से विधाता के।
आया देख सामने स–मद महिषासुर को,
आया रोष नेत्र में हिमाद्रि–अंग–जाता के।
होठ से दबाके दंत, दर्प से प्रहार कर,
प्राण ही उड़ा दिए तुरन्त दुःखदाता के।
घूम गए घुघरू निनाद–युक्त नूपुरों के,
झूम गए झूमके झटिति विश्वमाता के।।''

'विराट संग्राम' शीर्षक लम्बी छह पृष्ठों की कविता द्वितीय महायुद्ध से सम्बन्धित है। सनेही जी के द्वारा विशेषतः प्रशंसित कवि–सम्मेलनों में इस क्रांतिकारी कविता की बड़ी धूम थी। गणात्मक मुक्त–छन्द में रचित आवृत्तिमूलक लयात्मक प्रवेगशील प्रवाह इसका वैशिष्ट्य है।

'वर्धमान' जैन धर्म के चौबीसवें तीर्थंकर भगवान महावीर की जीवनी पर आधारित 17 सर्गों का महाकाव्य है। इसमें कुल 19997 वर्णवष्त्त हैं। वर्णनात्मकता के बावजूद भी प्रकषति, देशकाल वर्णन एवं रस भावावेश अंकन की दषष्टि से यह कषति उत्कष्ष्ट है। इसे सिद्धार्थ का परिष्कष्त सुष्ठु विकसित रूप कहा जा सकता है। रस, वषत्ति, संधि, गुण आदि के शास्त्रीय विन्न्यास के साथ चमत्कषति की सर्जना इसकी प्रमुख विशेषता है। शिल्प की दषष्टि से इसे 'कला–प्रबन्ध' (एपिक ऑफ आर्ट) का उदाहरण माना जा सकता है। प्रथम सर्ग में भारत के गौरव और सौन्दर्य का उद्‌गान है–

''सुकेश सी कानन श्रेणियाँ जहाँ,
प्रलम्ब–माला–मयि–अर्क–जन्हुजा।
कटिस्थ विन्ध्यादि नितम्ब–देश–सा, लसा
पदक्षालन–शील सिंधु है।''

इसमें कवि का 'शब्द–सम्राट' रूप पूरे उत्कर्ष पर है। अपनी विशिष्ट अलंकष्त शैली और प्रौढ़ शब्द–साध ाना के कारण यह सबसे अलग दिखाई पड़ता है। कवि की व्यापक मानवतावादी दषष्टि महावीर जैसे जननायक को नये रूप में हमारे साक्ष प्रस्तुत करती है।'अग्निपथ' 529 गीतिका–छन्दों में रचित सात सर्गों का खण्डकाव्य है। इसमें राम–रावण–युद्ध के अंतिम दिन का दुखांत कथानक है। मंघनाद–वध के कारण राक्षसराज रावण तथा मंदोदरी का रुदन वर्णित है। मंदोदरी की फटकार से रावण संकल्प करता है–

''विश्व रावण–हीन होगा या कि राम–विहीन ही''

अंत में राम–रावण के युद्ध में रावण के वध और तदुपरांत सिंहिका का पतिव्रता की भाँति सती होने का भव्य वर्णन है। वीर, करुण के साथ शृंगार और शांत का भी सुन्दर अंकन है। वार्तालाप मानवीय और घटना–प्रसंग मार्मिक हैं। सीता की करुणा, सिंहिका के शौर्य और निकषा, मंदोदरी, सर्मा आदि के चरित्र को उभार कर कवि ने कोमलपक्ष को पुष्ट किया है।

'गाँधी–चरित्र' लगभग 300 पष्ष्ठों में रचित महाकाव्य पं0 बलदेवप्रसाद मिश्र को प्रकाशनार्थ दिया गया था, किन्तु खेद है कि अभी तक यह प्रकाश में नहीं आ सका। यह महाकाव्य पूर्वचरित, मध्यम चरित और उत्तर चरित– तीन विभागों में रचित विशुद्ध मानवीय काव्य है। देवत्व की कल्पना इसमें नहीं है। इसमें सिद्धराज जैसा 15 वर्णों का अतुकांत छन्द है। भाषा सरल है। यहाँ अफ्रीका में गाँधी के उपदेश का मात्र एक उदाहरण निम्नांकित है–

''नश्वर शरीर है न जीने का ठिकाना है,
`वा हेतु युगल करों को दिया विधि ने,
चरण दिये कि दौड़कर दो सहायता,
बढ़कर और न हताहतों की सेवा से,
कोई श्रेष्ठ लाभ है, न कोई पुण्य फल है।''

ऐसे प्रातिभ महाकवि को सुनने तथा उसके व्यक्तित्व की झलक पाने का सौभाग्य मुझे सर्वप्रथम 1958–59 में

सीतापुर (उ0प्र0) में आयोजित विशाल प्रदर्शनी के कवि–सम्मेलन में मिला था। पुनः फरवरी 1960–61 में जब मैं लखनऊ विश्वविद्यालय के कला संकाय का छात्र था और मेरे मित्र अनूप जी के भान्जे श्री सरोज अवस्थी भी विधि संकाय के छात्र थे तथा वे विश्वविद्यालय–डिस्पेन्सरी में नियुक्त अनूप जी के सुपुत्र डॉ0 विनीत शर्मा के साथ निवास कर रहे थे। उन दिनों अनूप जी भी चित्त–विक्षेप की स्थिति में वहीं उन्हीं के साथ रहते थे। एक दिन सरोज अवस्थी से अनूप जी की चर्चा हुई तो उन्होंने मुझे उनकी मनोदशा के विषय में बतलाया और कहा कि अगले दिन अपरान्हन 4:30 बजे के आस–पास आओ तो तुम्हें मामा जी (अनूप जी) से मिलवा दूँगा और कविताएँ भी सुनवाऊँगा। तदनुसार मैं डॉ0 विनीत शर्मा के यहाँ पहुँचा। सरोज जी अनूप जी को अपने साथ ड्राइंग रूम में ले आए। मैंने उन्हे प्रणाम किया पर मौन रहकर ही उन्होंने अपना प्रसन्न–भाव व्यक्त कर दिया। कुछ क्षणों बाद सरोज ने उनसे पूछा– 'बाबूजी! इस समय आप कहाँ हैं?' उत्तर मिला– 'स्मरण नहीं'। इस पर सरोज जी ने कहा कि आप लखनऊ में बैठे हैं। मेरी ओर इंगित करते हुए बाबूजी से कहा कि यह मेरे मित्र आपकी कविता सुनने आए हैं। यह सुनकर बाबूजी कुछ स्मृति में खोए से जान पड़े। तब तक सरोज जी ने एक छन्द का प्रारम्भिक अंश 'ध्यान धरते हीकृकृकृ'का संकेत दिया और बाबूजी सुनकर उसे ले उड़े–

''ध्यान धरते ही शारदा के पद–पंकज का,
बंद करते ही लोल लोचन–पटल के।
खुल गया एक समालोक स्वप्न–लोक तुल्य,
देख रमणीयता अनूप–नेत्र छलके।
सर था, समीर था, पिकी थी, पुष्प–वाटिका थी,
भू पै गिरते थे मकरन्द–बुन्द ढलके।
ऐसी दिव्य बेला को विलोक अंतरिक्ष पर,
धाई मेरी दषष्टि भूमि तल से उछल के।''

सरोज ने पुनः संकेत किया– 'ललित ललाटकृकृ।' बाबूजी ने पूरा छन्द अपनी विशिष्ट भाव–भंगिमा की शैली के साथ पूरा कर दिया–

''ललित ललाट जहाँ सुन्दर सिंदूर युक्त,
भ्रू की वहीं कालिमा अनूपम लखाती थी।
अंजन से अंजित अरुण रंग वाली श्वेत,
आँखों की न उपमा कहीं भी दषष्टि आती थी।
कलित कपोलों पै सु–केश कुण्डलों के मध्य,
सुषमा प्रवालों की मनोरम दिखाती थी।
भाल पै कि लोचन पै, गाल पै कि शारदा के,
तरल त्रिवेणी की तरंग लोट जाती थी।''

फिर कुछ देर मौन के बाद 'शर्वाणी' की चर्चा चली, सरोज जी ने बाबूजी से उसका मात्र एक छन्द और सुनाने का निवेदन किया। बाबूजी ने विस्मषति का संकेत दिया। सरोज जी बोल उठे– 'बाबूजी, 'चलित सरोरुह कलित कोषकृकृकृ।' सुनकर बाबूजी ने वह छन्द भी अपनी विशिष्ट पाठ–शैली में प्रस्तुत करने की महती कष्पा की–

'चलित सरोरुह कलित कोष–तुल्य लाल,
लोचन उमा के वीर बाँके देख फरके।
झंकषति समेंत वलयावलि वलित कर,
कंज से सनाल कंज–तुल्य पंख सरके।
बाण चलते ही प्राण भागे प्रतिपक्षियों के,
चित्त उठे सिहर विरंचि हरि–हर के।
सर–सर–सर शर छूटते शरासन से,
तर–तर–तर कंचुकी के बंद तरके।''

उस विदग्ध वाग्–विभूति के प्रसाद से मैं कितना आह्लादित हुआ, व्यक्त नहीं कर सकता। इस प्रकार मैं उस महाविभूति को प्रणाम करके अपने आवास लौट आया। उन सारस्वत–क्षणों की स्मषति आज भी मन में कौंध उठती है। महाकवि अनूप के विस्मयकारी कवि–व्यक्तित्व के प्रति (उन्हीं के द्वारा रचित छन्द की) इन पंक्तियों के द्वारा मैं अपनी विनम्र श्रद्धांजलि व्यक्त करता हूँ–

''सिन्धु में असंख्य वारि–बुन्द लखे होंगे किन्तु,
देखिए समुद्र एक बुन्द में भरा हुआ।''

————————

गैर-कांग्रेसवाद के शिल्पी थे राम मनोहर लोहिया

देश में गैर कांग्रेसवाद की अलख जगाने वाले महान स्वतंत्रता सेनानी और समाजवादी नेता राम मनोहर लोहिया चाहते थे कि दुनियाभर के सोशलिस्ट एकजुट होकर मजबूत मंच बनाए। जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय के प्रो. तुलसी राम कहते हैं कि लोहिया भारतीय राजनीति में गैर कांग्रेसवाद के शिल्पी थे और उनके अथक प्रयासों का फल था कि 1967 में कई राज्यों में कांग्रेस की पराजय हुई, हालांकि केंद्र में कांग्रेस जैसे तैसे सत्ता पर काबिज हो पायी।

तुलसी राम ने कहा कि हालांकि लोहिया 1967 में ही चल बसे लेकिन उन्होंने गैर कांग्रेसवाद की जो विचारधारा चलायी उसी की वजह से आगे चलकर 1977 में पहली बार केंद्र में गैर कांग्रेसी सरकारी बनी। उन्होंने कहा कि लोहिया मानते थे कि अधिक समय तक सत्ता में रहकर कांग्रेसद अधिनायकवादी हो गयी थी और वह उसके खिलाफ संघर्ष करते रहे। 23 मार्च 1910 को उत्तर प्रदेश में फिरोजाबाद जिले के अकबरपुर में जन्मे राम मनोहर लोहिया मैट्रिक की परीक्षा में प्रथम आने के बाद इंटरमीडिएट की पढ़ाई के लिए बनारस हिंदू विश्वविद्यालय गए। उन्होंने कलकत्ता विश्वविद्यालय से स्नातक की शिक्षा ली। बहुत कम उम्र में ही उनकी मां गुजर गयीं। वह अपने पिता हीरालाल के माध्यम से स्वतंत्रता आंदोलन से जुड़े। हीरालाल अपने पुत्र को कई विरोध प्रदर्शनों में ले गए।

लोकमान्य तिलक के निधन पर छोटी हड़ताल आयोजित कर लोहिया ने स्वतंत्रता आंदोलन में अपना पहला योगदान दिया। पिता के माध्यम से ही वह गांधीजी से मिले। गांधीजी ने उनके जीवन पर गहरा असर डाला। वह महज दस साल की उम्र में गांधीजी के सत्याग्रह से जुड़े। बाद में वह जवाहरलाल नेहरू से मिले और उनसे उनकी निकटता बढ़ गयी। हालांकि आगे चलकर उन्होंने कई मुद्दों पर नेहरू से भिन्न राय रखी। जिनिवा में लीग ऑफ नेशंस सभा में भारत का प्रतिनिधित्व ब्रिटिश राज के सहयोगी बीकानेर के महाराजा की ओर से किए जाने पर लोहिया ने कड़ी आपत्ति जतायी। अपने इस विरोध का स्पष्टीकरण देने के लिए अखबारों और पत्रिकाओं में उन्होंने कई पत्र भेजे। इस पूरी प्रक्रिया के दौरान लोहिया रातोंरात चर्चा में आ गए।

ारत लौटने के बाद वह कांग्रेस में शामिल हो गए। वह समाजवाद की ओर आकर्षित हुए और कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की स्थापना में मदद की। उन्होंने कांग्रेस के अंदर ही विदेश मामले से संबंधित एक अलग विभाग बनाया और नेहरू ने उन्हें उसका प्रथम सचिव बनाया।

वर्ष 1940 में उन्होंने श्सत्याग्रह अबश आलेख लिखा और उसके छह दिन बाद उन्हें दो साल की कैद की सजा हो गयी। मजिस्ट्रेट ने उन्हें सजा सुनाने के दौरान उनकी खूब सराहना की। जेल में उन्हें खूब यातना दी गयी। दिसंबर, 1941 में वह रिहा कर दिए गए। आजादी के बाद लोहिया राजनीति में काफी सक्रिय रहे। स्वतंत्रता बाद के कई सालों तक कांग्रेस सत्तासीन रही।

उन्होंने कांग्रेस का पुरजोर विरोध किया और गैरकांग्रेसवाद की अलख जगायी। वह प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के महासचिव थे। उन्होंने आगे चलकर विश्व विकास परिषद बनायी। जीवन के आखिरी वर्षों में वह राजनीति के अलावा साहित्य से लेकर राजनीति एवं कला पर युवाओं से संवाद करते रहे। वह 12 अक्तूबर, 1967 को इस दुनिया से चल बसे।

जेल की दुनिया

मधु लिमये

जेल की दुनिया के कायदे-कानून अलग होते हैं। प्रतिष्ठा के मायने भी अलग होते हैं। हत्या करके आए हुए कैदी स्वयं को बड़ा इज्जतदार मानते थे। उनके बाद डाकुओं का नंबर आता था। छोटे-छोटे चोर-उचक्कों को वे बिल्कुल फालतू मानते थे। चार सौ बीसी करने वाले ज्यादातर पढ़े-लिखे होते थे। वे ऑफिस में काम करके विशेष सुविधाएँ प्राप्त किया करते थे। बलात्कार करने के जुर्म में सजायाफ्ता एक-दो कैदी थे जिन्हें खूनी कैदी 'चमड़ी च से जेल की दुनिया के कायदे-कानून अलग होते हैं। प्रतिष्ठा के मायने भी अलग होते हैं। हत्या करके आए हुए कैदी स्वयं को बड़ा इज्जतदार मानते थे। उनके बाद डाकुओं का नंबर आता था। छोटे-छोटे चोर-उचक्कों को वे बिल्कुल फालतू मानते थे। चार सौ बीसी करने वाले ज्यादातर पढ़े-लिखे होते थे। वे ऑफिस में काम करके विशेष सुविधाएँ प्राप्त किया करते थे। बलात्कार करने के जुर्म में सजायाफ्ता एक-दो कैदी थे जिन्हें खूनी कैदी 'चमड़ी चोर' कहकर व्यंग्य से पुकारते थे, एक 'चमड़ी चोर' से जब मैंने पूछा, 'तुम क्यों आए हो?' तब उसने साफ लफ्जों में कहा, 'खेत में लड़की दिखी, मैंने उसे दबोच लिया।'

चोरों में भी 'उठाईगिरी' करने वाले चोरों को कम दर्जे का माना जाता था। बड़ी होशियारी से पाकेटमारी करने वालों को उच्च श्रेणी का चोर समझा जाता था। उठाईगिरी करने वाले जेल में भी हाथ की सफाई दिखला देते थे, लेकिन पॉकेटमार इस काम को हीन समझते थे।
धुलिया जेल से लेकर वर्ष सन् 1975 को नरसिंहगढ़ के जेल तक मैंने पॉकेटमारों की यही एक नीति देखी। नरसिंहगढ़ की जेल में मेरी खिदमत करने के लिए जो कैदी दिया गया था, अन्ना रेड्डी, वह पहले दर्जे का पॉकेटमार था। उसकी पत्नी भी अच्छी पॉकेटमार थी और ससुर भी। अन्ना को ढाई साल की सजा दी गई थी। बड़ी जेल में माफी ज्यादा मिलती है। इसलिए मेरे जरिए उसने इंदौर की बड़ी जेल में अपना तबादला करवाने हेतु सिफारिश कराई थी। वैसे इसका मुख्य कारण था बड़ी मात्रा में आसानी से मिलने वाला गाँजा। यह उसने मुझे वहाँ से निकलते समय बताया। जेल से जल्दी छूटकर अपनी बेटी को पॉकेटमारी करने का हस्त-कौशल सिखाने हेतु उसकी उँगलियाँ कब से खुजला रही थीं। लेकिन यह कुशल कारीगर बड़ा ही नेक था। जेल में कभी उसके बारे में शिकायत मैंने नहीं सुनी। मेरे कमरे में पूरा सामान खुला रहता था। पैसे भी टेबल पर पड़े रहते थे, लेकिन मुझे याद नहीं आता कि उसने किसी चीज को हाथ साफ करने की इच्छा से छुआ हो। पॉकेटमारों की नेकनामी का पहला अनुभव मैंने धुलिया के जेल में किया। छह महीने से कम सजा पाने वाले कैदियों को घृणा से देखा जाता था। 'फालतू में संडास खराब करने के लिए आए हैं।' उनके बारे में दीर्घ सजा पाने वाले कैदी कहा करते थे।

साधारण कैदी, वाचमैन और वॉर्डर के अलावा और तीन प्रकार के कैदी मैंने धुलिया के जेल में देखे। सात साल से ज्यादा सजा पाने वालों को पीली टोपी पहननी पड़ती थी। ज्यादातर खूनी और डकैत इस श्रेणी में आते थे। उन दिनों चमड़ी चोरों को भी सात साल की सजा दी जाती थी, इसलिए उन्हें भी पीली टोपी श्रेणी में शामिल किया जाता था। जिन कैदियों ने कभी जेल से भागने की कोशिश की हो, उन्हें धोखेबाज मानकर लाल टोपी पहननी पड़ती थी। उनके पैरों में बेड़ियाँ डाली जाती थीं। लेकिन सही मायने में जेल के स्थायी निवासी यदि कोई थे, तो वे थे, काली टोपी वाले! अंग्रेजी में उन्हें हैबिच्यूएल्स कहा जाता था। काली टोपी उसी का एवजी शब्द था जो जेल में अक्सर पुकारा जाता था। इस काली टोपी में ज्यादातर ऐसे कैदी थे, जिनका जेल के बाहर कोई सगा संबंधी नहीं था। परिणामत: वे बार-बार जेल में आया करते थे। कुछ कैदी जेल की जिंदगी के इतने आदी थे कि वे जेल के बाहर रह ही नहीं सकते थे और बार-बार जेल में आ जाते थे। कुछ कैदी तो एक-दो दिन में वापस आते जाते थे। उत्तर भारत की जेल में मैंने देखा कि धारा 107/109 का बड़ी मात्रा में गलत इस्तेमाल करके भी कैदियों को जेल में भरा जाता था। उनसे जेल के संडास साफ करवाए जाते थे। इसी काम को ध्यान में रखकर ही कुछ कैदियों को जेल में लाया जाता था।

धुलिया के जेल में एक अजीब कैदी आया था। उसके जैसा कैदी मैंने बाद में कभी नहीं देखा। उसकी टोपी तीन रंगों की थी। एक हिस्सा लाल रंग का, क्योंकि उसने जेल तोड़कर भागने की कोशिश की थी। दूसरा हिस्सा पीला था, क्योंकि उसे सात साल की सजा हुई थी। उसकी टोपी का तीसरा हिस्सा काले रंग का था क्योंकि वह बार-बार जेल में आने वाला हैबिच्यूएल था।

वहीं एक-दो महीनों की सजा पाने वाला एक लड़का था। एक दिन वह जेल से छूट गया। छूटने से पहले मैंने उसे बहुत समझाया था-'तुम घर जाना, अपने माँ-बाप के पास लौटना, कुछ सीखना' आदि बहुत-सी बातें कही थीं। मुझे लगा था, इन बातों का उस पर असर हो गया होगा। लेकिन मैं पूरा बेवकूफ निकला, क्योंकि वह लड़का उसी दिन शाम को हमारी बैरक में वापस आ गया। मैंने पूछा, 'अरे, तुम वापस कैसे आ गए?' उसने कहा, 'क्या करूँ साब? अपना नसीब ही फालतू! छूटने के बाद मैं शहर में घूम रहा था। दोपहर में मैंने एक घर का दरवाजा खुला देखा। अंदर के कमरे में एक कोट टँगा हुआ था। पता नहीं क्या हुआ? ोर' कहकर व्यंग्य से पुकारते थे, एक 'चमड़ी चोर' से जब मैंने पूछा, 'तुम क्यों आए हो?' तब उसने साफ लफ्जों में कहा, 'खेत में लड़की दिखी, मैंने उसे दबोच लिया।' चोरों में भी 'उठाईगिरी' करने वाले चोरों को कम दर्जे का माना जाता था। बड़ी होशियारी से पाकेटमारी करने वालों को उच्च श्रेणी का चोर समझा जाता था। उठाईगिरी करने वाले जेल में भी हाथ की सफाई दिखला देते थे, लेकिन पॉकेटमार इस काम को हीन समझते थे।

धुलिया जेल से लेकर वर्ष सन् 1975 को नरसिंहगढ़ के जेल तक मैंने पॉकेटमारों की यही एक नीति देखी। नरसिंहगढ़ की जेल में मेरी खिदमत करने के लिए जो कैदी दिया गया था, अन्ना रेड्डी, वह पहले दर्जे का पॉकेटमार था। उसकी पत्नी भी अच्छी पॉकेटमार थी और ससुर भी। अन्ना को ढाई साल की सजा दी गई थी। बड़ी जेल में माफी ज्यादा मिलती है। इसलिए मेरे जरिए उसने इंदौर की बड़ी जेल में अपना तबादला करवाने हेतु सिफारिश कराई थी। वैसे इसका मुख्य कारण था बड़ी मात्रा में

मुझे याद नहीं आता कि धुलिया की जेल में जेलर या सुपरिंटेंडेंट के साथ मेरा कभी झगड़ा हुआ हो। ब्लेक अनुशासन में कठोर था, लेकिन स्वभाव से दुष्ट नहीं था। कोई भी व्यावहारिक और उचित बात सुनने के लिए वह हरदम तैयार रहता। सूबेदार के साथ हमारा ज्यादा संबंध रहता था। उसका गुर्राना छोड़ा जाए तो वह भी दिल से अच्छा था। कुछ ही दिनों में जोशी नाम का एक नया डिप्टी जेलर आया। वह स्वभाव से दुष्ट था, कठोर था। उससे किसी की भलाई देखी नहीं जाती थी। राजनीतिक कैदियों का सुख उसे फूटी आँख नहीं सुहाता था। उसकी आत्मा इस बात को लेकर बेचैन रहती। वह हरदम कुछ-न-कुछ खुराफात करता रहता था।' भेंगा आदमी बड़ा चालाक होता है। ऐसी कहावत है।

वैसे मैंने कभी इस बात पर ध्यान नहीं दिया था, लेकिन भेंगा और तिरछा जोशी सचमुच बड़ा चालाक था। उसके बारे में यह कहावत सौ फीसदी सही थी। कार्यभार ग्रहण के पश्चात् वह वक्त-बेवक्त जेल में घूमकर कैदियों को छेड़ा करता था और अपनी कर्तव्य-कठोरता का ढोंग रचता था। ऐसे ही एक दिन वह बच्चा कोठा में आया। दोपहर के तीन बजे होंगे। मैं अपनी बैरक में लेटकर पढ़ रहा था, बस! वह जलभुन गया। 'आप इस वक्त क्या पढ़ रहे हैं? काम करो!' मैंने बड़े ठंडे मूड से उसे कहा, 'मुझे जितना काम करना था, मैंने कर दिया।

आसानी से मिलने वाला गाँजा। यह उसने मुझे वहाँ से निकलते समय बताया। जेल से जल्दी छूटकर अपनी बेटी को पॉकेटमारी करने का हस्त-कौशल सिखाने हेतु उसकी उँगलियाँ कब से खुजला रही थीं। लेकिन यह कुशल कारीगर बड़ा ही नेक था। जेल में कभी उसके बारे में शिकायत मैंने नहीं सुनी। मेरे कमरे में पूरा सामान खुला रहता था। पैसे भी टेबल पर पड़े रहते थे, लेकिन मुझे याद नहीं आता कि उसने किसी चीज को हाथ साफ करने की इच्छा से छुआ हो। पॉकेटमारों की नेकनामी का पहला अनुभव मैंने धुलिया के जेल में किया। छह महीने से कम सजा पाने वाले कैदियों को घृणा से देखा जाता था। 'फालतू में संडास खराब करने के लिए आए हैं।' उनके बारे में दीर्घ सजा पाने वाले कैदी कहा करते थे।

शुरू में जेल के दिन रेंगते हुए गुजरते, ऐसा महसूस होता था। गुरुवार आया। फिर से मूँग की दाल और साथ में बाजरे की रोटियाँ! अब क्या किया जाए? मेरे सामने सवाल खड़ा था। कितनी बार भूखा रहा जाए? अप्पा मेस में गया और एक छोटी-सी गरमा-गरम बाजरे की रोटी लेकर वापस आया। उसने उस पर चुटकी भर नमक रखा और मुझसे कहा, 'यह रोटी खाना, एक-एक टुकड़ा, ठीक तरह से चबा-चबाकर खाना। यह रोटी इतनी मीठी लगेगी कि तुम दुबारा नहीं कहोगे कि यह रोटी नहीं चाहिए।' अप्पा ने जैसा कहा था, वैसा ही मैंने किया।

अच्छी तरह चबा-चबाकर खाने के कारण वह रोटी मुझे इतनी मीठी लगी कि बाद में हर मंगलवार और गुरुवार का इंतजार मैं बड़ी बेसब्री से करने लगा। तब से मैं बाजरे की रोटी का परम भक्त बन गया हूँ। आदतन मूँग की दाल भी मुझे अच्छी लगने लगी। मूँग की दाल आगे चलकर मेरी पसंदीदा दाल बन गई। शादी

के बाद मेरी पत्नी बहुत बार मूँग की दाल बनाती थी, तब मैं उसे मज़ाक से कहा करता था–'तुमने और धुलिया ने जेल में मुझे मूँग की दाल पर ही रखा है।' खाने-पीने के मामले में ज्यादा नाक-भौं सिकोड़ने वाले बच्चे को छह महीनों के लिए ही सही, जेल में भेजना चाहिए।' मैं माँ से कहा करता था।

उसने पूछा, 'क्यों? उससे क्या होगा?' मैंने कहा, 'उससे बहुत कुछ होगा। सब बच्चे खाने-पीने के मामले में बिल्कुल ठीक हो जाएँगे। अब मुझे ही ले लो। बाजरे की रोटी और मूँग की दाल को मैं छूता तक नहीं था, जबकि आज मैं उसे बड़े चाव से खाता हूँ।'

मुझे याद नहीं आता कि धुलिया की जेल में जेलर या सुपरिंटेंडेंट के साथ मेरा कभी झगड़ा हुआ हो। ब्लेक अनुशासन में कठोर था, लेकिन स्वभाव से दुष्ट नहीं था। कोई भी व्यावहारिक और उचित बात सुनने के लिए वह हरदम तैयार रहता। सूबेदार के साथ हमारा ज्यादा संबंध रहता था। उसका गुर्राना छोड़ा जाए तो वह भी दिल से अच्छा था। कुछ ही दिनों में जोशी नाम का एक नया डिप्टी जेलर आया। वह स्वभाव से दुष्ट था, कठोर था। उससे किसी की भलाई देखी नहीं जाती थी। राजनीतिक कैदियों का सुख उसे फूटी आँख नहीं सुहाता था।

उसकी आत्मा इस बात को लेकर बेचैन रहती। वह हरदम कुछ-न-कुछ खुराफात करता रहता था।' भेंगा आदमी बड़ा चालाक होता है। ऐसी कहावत है। वैसे मैंने कभी इस बात पर ध्यान नहीं दिया था, लेकिन भेंगा और तिरछा जोशी सचमुच बड़ा चालाक था। उसके बारे में यह कहावत सौ फीसदी सही थी। कार्यभार ग्रहण के पश्चात् वह वक्त-बेवक्त जेल में घूमकर कैदियों को छेड़ा करता था और अपनी कर्तव्य-कठोरता का ढोंग रचता था।

ऐसे ही एक दिन वह बच्चा कोठा में आया। दोपहर के तीन बजे होंगे। मैं अपनी बैरक में लेटकर पढ़ रहा था, बस! वह जलभुन गया। 'आप इस वक्त क्या पढ़ रहे हैं? काम करो!' मैंने बड़े ठंडे मूड से उसे कहा, 'मुझे जितना काम करना था, मैंने कर दिया। अब मेरा पढ़ने का समय है।' मेरे जवाब से उसका दिमाग और घूम गया। उसने हमारे वाचमैन को हड़काना शुरू किया। अप्पा डर गया। 'कल से इससे पूरी वर्दी लेना।' उसने वाचमैन को हिदायत दी। 'सोलह औंस की वर्दी है, उसे पूरा किए बगैर आप पढ़ नहीं सकते।' उसने मुझे फटकारा। हर रोज मैं दस-साढ़े दस बजे तक जोर-शोर से काम कर आठ औंस धागा दिया करता था। दूसरे दिन मैंने दस बजे तक काम किया। जैसे-तैसे छह औंस ऐंठा हुआ धागा तैयार हो गया। मैंने सवालिया अंदाज में अप्पा की ओर देखा। वह कुछ नहीं बोला। इतने में सूबेदार को आँगन से गुजरते हुए मैंने देखा। मैंने सूबेदार से कहा, 'नया डिप्टी जेलर कहता है कि पढ़ना नहीं, कुछ नहीं करना। सोलह औंस वर्दी पूरी करो।' सूबेदार ने मजाक में हँस दिया और कहा, 'नया आदमी है, नया जोश है। तुम छोड़ देना। लेकिन जेल हम चलाते हैं या यह साहब चलाते हैं? तुम वही करना जो मैंने कहा है। देखूँ तो सही, साहब क्या करता है?' सूबेदार की बातों ने मेरा धीरज बँधा दिया और डिप्टी जेलर की ओर बिल्कुल ध्यान न देने की बात मैंने तय की। इस वाकया के बाद एक-दो बार वह मेरे काम का निरीक्षण करने हेतु आया था। लेकिन दोपहर में किताब पढ़ने के अपने नियम में मैंने रुकावट नहीं डाली। वह अंदर-ही-अंदर जलभुन जाता था, हिदायतें देता था, लेकिन उसे पता था कि सूबेदार भीतर से मेरा हिमायती है। इसलिए वह कुछ नहीं कर पाता था। ☆

(मधु लिमये की आत्मकथा से साभार)